R.N.I. No. : DELBIL/2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

मूल्य-7 रुपये, वर्ष-24, अंक-2, फरवरी-2025

मङ्गलायतन

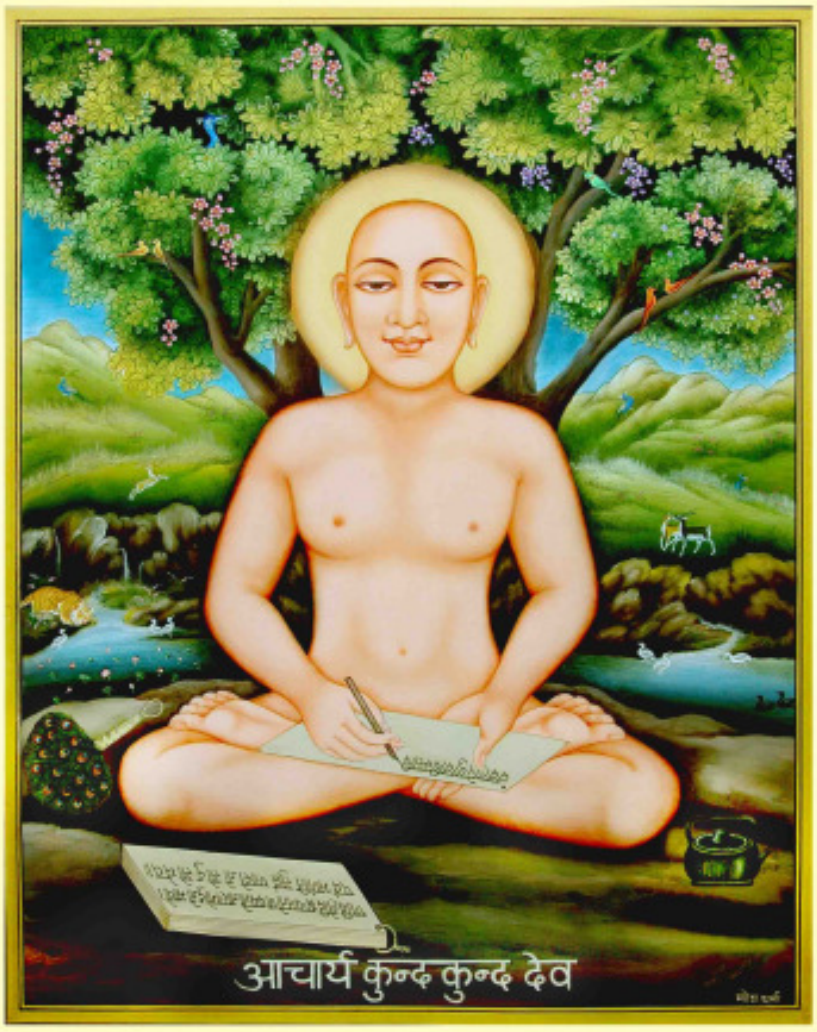

समयसार एवं उसकी द्रव्यदृष्टि

आचार्य कुन्दकुन्द की सभी रचनाओं में समयसार उनकी सर्वप्रथम एवं सर्वोपरि रचना है। न केवल कुन्दकुन्द साहित्य वरन् प्राप्त संपूर्ण जिनागम में समयसार जैसी दूसरी कृति नहीं है। उसका प्रतिपाद्य समयसार अर्थात् शुद्ध जीवतत्त्व अथवा शुद्धात्मा है, जैसे समयसार का प्रारंभ करते ही जीव-अजीव अधिकार की छठी गाथा में 'ज्ञायक' कहा गया है। और यह शुद्ध जीवतत्त्व ही द्रव्यदृष्टि अथवा सम्यग्दर्शन का विषय है; क्योंकि सम्यग्दर्शन मुक्ति का प्रथम चरण अर्थात् जीवन की सबसे पहली आवश्यकता है। अत: आचार्य कुन्दकुन्द की प्रथम रचना समयसार ही होना चाहिए।

सचमुच सम्यग्दर्शन का विषय इतना सूक्ष्म, दुरूह एवं कल्पनातीत है कि शरीर, कर्म एवं मोह-राग-द्वेष-संयुक्त आत्मपदार्थ में उसे तलाश लेना सुलभ नहीं है तथा आगम में भी निमित्तों की ओर से सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, सात तत्त्व की श्रद्धा अथवा स्व-पर की श्रद्धा आदि के रूप में उनकी अनेक परिभाषायें मिलती हैं, किंतु सचमुच उसका विषय तो एकमात्र निज शुद्ध जीवतत्त्व ही है; जो शरीर, कर्म आदि संयोगों, 'मैं लोकालोक को जानता हूँ' आदि अध्यवसानों, स्वयं आत्मा में ही उत्पन्न प्रमत्त-अप्रमत्त आदि क्षणिक पर्याय एवं स्वयं शुद्ध जीवतत्त्व के संबंध में प्रवर्तित विकल्पों से भी अतीत है। वह शुद्ध जीवतत्त्व नव तत्त्वों के बीच रहकर भी नव तत्त्वों में संक्रमित न

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (रजि.), अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र (e-पत्रिका)

वर्ष-25, अङ्क-2 (वी.नि.सं. 2551; वि.सं. 2081) फरवरी 2025

हे कुन्दकुन्द.....

हे कुन्दकुन्द आपने! सच्चा पथ दिखा दिया।

दृष्टि का विषय मेरी दृष्टि में बिठा दिया।
अरे शुद्धात्मा के ध्यान से मुक्ति मिले सदा।
हूँ ज्ञान मात्र आत्मा पर भाव से जुदा
आराधना के काल में आराध्य बना दिया
हे कुन्दकुन्द आपने सच्चा....

मुक्ति में जो भी जायेंगे या आज तक गए
सम्यक्त्व का माहात्म्य है अब और क्या कहें
मेरे ही ब्रम्ह भाव को ब्रम्हा बना दिया
हे कुन्दकुन्द आपने सच्चा...

थी भूल एक मूल में पर्याय दृष्टि की
अब द्रव्यदृष्टि की निधि मुझे आपसे मिली
भोगों की भीड़ में मुझे योगी दिखा दिया
हे कुन्दकुन्द आपने सच्चा....
तिरोभाव पर विशेषों को सामान्य दिखा दिया।
हे कुन्दकुन्द आपने सच्चा...

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि.वि.
सह सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
बालब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

क्या-कहाँ

चरणानुयोग	सम्यग्दृष्टि सुगति पाता है	5
द्रव्यानुयोग	समयसार नाटक पर प्रवचन	16
	स्वानुभूतिदर्शन :	20
प्रथमानुयोग	हस्तिनापुर का अतिशयकारी इतिहास	23
करणानुयोग	गुणस्थान सम्बन्धी चर्चा	27
	श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप	29
प्रथमानुयोग	पण्डित हीरानन्दजी	31
द्रव्यानुयोग	जिस प्रकार-उसी प्रकार	32
	समाचार-दर्शन	33

चरणानुयोग

योगसार शास्त्र की गाथा 88 पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन

सम्यग्दृष्टि सुगति पाता है

यह योगसार शास्त्र है, योगीन्दुदेव मुनि—88 गाथा —

सम्माइट्ठी जीवडहँ दुग्गइगमणु ण होइ।
जइ जाइ वि तो दोसु णवि पुव्वक्किउ खवणेइ॥ 88॥

(सम्यग्दृष्टि खोटी गति में) जाए तो दोष नहीं, पूर्व का कर्म खिरता है – ऐसा कहते हैं। **सम्यग्दृष्टि जीव का खोटी गतियों में गमन नहीं होता...** क्योंकि अपना आत्मा शुद्ध अखण्ड निर्मल, निर्विकल्प, दृष्टि का आदर है। दृष्टि में अपने पूर्ण स्वभाव का आदर है; सम्पूर्ण संसार की अन्दर दृष्टि में उपेक्षा है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि '**दुग्गई-गमणु ण होइ**' उसके दुर्गतिगमन नहीं होता, क्योंकि अपना स्वभाव ज्ञायक चैतन्य-स्वभाव सन्मुख का उपादेयपना है और सम्पूर्ण संसार, विकल्प से लेकर सबकी उसे ग्रहण बुद्धि नहीं है... ग्रहण बुद्धि नहीं है और अपने शुद्ध स्वभाव की ग्रहण बुद्धि है। इस कारण से कदाचित् खोटी गति में जाए तो हानि नहीं है। वह तो **पूर्व कृतकर्म का क्षय करता है।** पूर्व का बाँधा हुआ कर्म है, उसका उसे नाश हो जाता है। समझ में आया?

आत्मा के शुद्धस्वरूप की गाढ़ रुचि, वह अतीन्द्रिय सुख से परम प्रेम रखनेवाले भव्य जीव को सम्यग्दृष्टि कहते हैं। पहले आनन्द से लेते हैं, आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, अमृतस्वरूप है, आनन्द मुझ में ही है। अतीन्द्रिय आनन्द की गाढ़ रुचि और परम प्रेम जिसे अन्तर आत्मा में हो गया, उसके पुण्य-पाप, उनका बन्धन और उनका फल, उसका प्रेम रुचि अन्तर से उड़ गयी है। समझ में आया? नाश हो गयी, रुचि नहीं है।

गाढ़ रुचि और अतीन्द्रिय सुख का परम प्रेम रखनेवाला... अपने आत्मा में ही अतीन्द्रिय आनन्द और शान्तरस पड़ा है। मेरी शान्ति और

आनन्द तीन काल-तीन लोक में कहीं मेरे अतिरिक्त, शुभभाव में भी मेरा आनन्द नहीं तो आदर किसका रहा? समझ में आया? परम गाढ़ रुचि... अपने निर्मालानन्द अनन्त गुण का प्रेम, उसमें आनन्द का प्रेम है तो समस्त गुण का प्रेम आ गया।

वह मोक्षनगर का पथिक बन जाता है। वह तो छूटने की दशा का पथिक है; बन्धन की दशा का पथिक नहीं है, क्योंकि आत्मा ही मुक्तस्वरूप है। राग, शरीर, कर्म से मुक्तस्वरूप है। ऐसे मुक्तस्वरूप की अन्तर रुचि, दृष्टि परिणति हो गयी तो उसे मोक्ष के पन्थ के ओर की ही उसकी पर्याय में गति है। आत्मा मोक्षस्वरूप है।

मुमुक्षु : कौन से गुणस्थान की बात है?

उत्तर : चौथे गुणस्थान की बात करते हैं।

मुमुक्षु : लोग तो सातवें में कहते हैं?

उत्तर : दुनिया चाहे जो कहे। पण्डितजी! यहाँ तो भगवान यह कहते हैं और ऐसा है। द्रव्य क्या चीज है? आत्मद्रव्य क्या है? आत्मद्रव्य अर्थात् अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान आदि शुद्धस्वरूप का पिण्ड वह आत्मा, वह तो मुक्तस्वरूप ही है। आत्मा राग, शरीर, कर्म से बँधा हुआ है? वस्तु, वस्तु बँधी हुई है? यदि वस्तु बँधे तो वस्तु का अभाव हो जाए। पर्याय में, एक समय की दशा में राग है तो जहाँ पर्यायबुद्धि गयी और वस्तु दृष्टि हुई तो वस्तु तो मुक्त है। वस्तु में बन्ध है? पदार्थ में बन्ध है? पदार्थ के बन्ध की व्याख्या क्या? पदार्थ बन्धन में है, इसका अर्थ कि पदार्थ है ही नहीं। (परन्तु) ऐसा है ही नहीं। समझ में आया?

पदार्थ, शुद्ध ध्रुव चैतन्य शाश्वत् अनन्त आनन्द का सागर है, उसकी पर्याय में एक समय का राग है, राग में कर्म का निमित्त भी है, वह तो पर्यायबुद्धि, अंशबुद्धि में दिखता है परन्तु जहाँ सम्यग्दृष्टि अर्थात् द्रव्यदृष्टि का भान हुआ, वस्तु अखण्ड ज्ञायकमूर्ति की दृष्टि हुई तो द्रव्य तो मुक्त है। समझ में आया? मुक्त अर्थात् पर्याय में भी मुक्ति का – छूटने के पन्थ

के मार्ग में वह है। सम्यग्दृष्टि बँधने के मार्ग में है ही नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

भगवान आत्मा, यह राग और कर्म का सम्बन्ध वस्तु में कहाँ है? सम्यग्दृष्टि की दृष्टि तो द्रव्य पर है। द्रव्य अर्थात् वस्तु, तो वस्तु तो पूर्ण मुक्त ही है। पूर्ण मुक्त की जहाँ दृष्टि हुई, वहाँ राग और कर्म के निमित्त के बन्ध की पर्याय का ज्ञान रहा, आदर नहीं रहा। समझ में आया? यह भगवान आत्मा अपने पूर्णानन्द और ज्ञायकस्वभाव की प्रीति, गाढ़ रुचि हुई तो स्वरूप मुक्त है तो पर्याय में भी मुक्त की दशा सन्मुख, मुक्ति के पन्थ में चला। यह मुक्ति में जाता है, अब मुक्ति में ही पर्याय जाती है। मुक्ति की ओर जाती है, बन्ध की ओर नहीं। जरा समझ में आया? जरा समझ में आया – ऐसा कहते हैं।

अतीन्द्रिय सुख का परम प्रेम रखनेवाला... मोक्षनगर का पथिक (बन जाता है)। नगर अर्थात् पूर्णानन्द की प्राप्ति; मुक्तदशा की ओर उसकी गति है; बन्धभाव की ओर गति नहीं। समझ में आया? आत्मा का स्वीकार होना चाहिए न? राग और कर्म निमित्तरूप होने पर भी, राग अवस्था में होने पर भी, वस्तु की दृष्टि करना और वस्तु में दृष्टि लगाकर सम्यक् परिणमन करना, वह तो दृष्टि का जोर है न? राग और कर्म होने पर भी, मुझ में नहीं है। समझ में आया? ऐसी अपनी चैतन्य ज्ञायकभाव की, अतीन्द्रिय आनन्द की परम गाढ़ रुचि जम गयी। बन्ध है, राग है, वह जानने योग्य है। जानने का प्रयोजन है, बस! इस तरफ दृष्टि गयी तो वह अन्दर छूटने के मार्ग का पथिक है। सम्यग्दृष्टि छूटने के मार्ग का पथिक है। आहा...हा...! यह स्वीकार कौन करे? समझ में आया? यह किसी को पूछने नहीं जाना पड़ता कि हे भगवान! मेरे कितने भव हैं? परन्तु मेरी चीज में भव ही नहीं हैं। कल नहीं आया? भगवान आत्मा को भव का परिचय नहीं है, कलश में आया न? ठीक है। वस्तु पदार्थ, चैतन्य ज्योत अनन्त गुण का सार, रसकस – चीज को भव का भाव या भव का परिचय बिलकुल नहीं है। यह तो पर्याय के अंश में राग का, भव का

परिचय है। पर्यायबुद्धि, अंशबुद्धि छूट गयी, स्वभावबुद्धि हुई—ऐसे स्वभाव में भव का परिचय, भगवान आत्मा में और आत्मा को है ही नहीं। सम्यग्दृष्टि को भी भव की शंका नहीं है – ऐसा कहते हैं। मैं नि:शंक मुक्त होनेवाला ही हूँ, अल्प काल में ही मेरी मुक्ति है, मैं अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करूँगा। मुझे दूसरी बात है ही नहीं। समझ में आया?

यह नि:सन्देहपना, नि:शंकपने का अनुभव तो अपनी दृष्टि का विषय हुआ। यह कहीं बाहर की चीज है? समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा.... अपना सम्पूर्ण धर्म, धर्म, सम्पूर्ण धर्मी को धर्म में धार लिया। दृष्टि में सम्पूर्ण आत्मा को धार लिया। सम्पूर्ण पूर्णानन्द प्रभु दृष्टि में आ गया। उसमें भव है ही नहीं, और भव के अभाव तरफ की पर्याय में गति हो गयी। नि:सन्देह हो गया, एक दो भव मेरे पुरुषार्थ की कमी है तो होंगे, तो वह राग के कारण से है, मेरे ज्ञान का ज्ञेय है। मेरी स्वामित्व की चीज नहीं, वह मेरी चीज ही नहीं। सहजात्मस्वरूप पूर्णानन्द ही मेरी चीज और मैं उसका स्वामी हूँ। समझ में आया? आहा...हा...! **सम्यग्दर्शन की महत्ता क्या? फिर थोड़ा लेंगे, रत्नकरण्डश्रावकाचार में से दो गाथाएँ लेंगे।**

वस्तु... एक समय की पर्याय में दोष है, एक समय की दशा में दोष है, वरना सम्पूर्ण आत्मा निर्दोष का पिण्ड है। अत: जब रुचि, एक समय के दोष के सम्बन्ध की रुचि छूट गयी, मेरे स्वभाव में यह एक समय का बन्ध है ही नहीं, स्वभाव में है ही नहीं। आहा...हा...! यह-वह किसकी दृष्टि काम आयेगी वहाँ? भगवान के वचन वहाँ काम आयेंगे? अपने आप भगवान आत्मा नि:सन्देह होकर अपना शुद्धस्वभाव का दृष्टि में परिणमन हुआ तो कहते हैं कि मोक्ष का ही पथिक है। गिर जाएगा तो? गिर जाने का प्रश्न कहाँ है? वस्तु कभी गिरती है? तो वस्तु की दृष्टि गिरने की कभी बात ही अन्दर में नहीं है। समझ में आया? और गिरने की शंका है, वहाँ द्रव्य की दृष्टि नहीं रहती। वह तो राग में आ गया, राग की एकत्वबुद्धि में आ गया। समझ में आया?

मुमुक्षु : दूसरे जीवों की तुलना में दृष्टि का जोर कोई अलग प्रकार होता है।

उत्तर : वस्तु ही यह है। सम्यग्दर्शन, सर्व में... यह क्या कहा? पण्डितजी! 'कर्णधार' कहा है न? कर्ण शब्द है। कण्ठस्थ नहीं... मोक्षमार्ग में कर्णधार है। खेवटिया है, नाविक; सबमें नाविक – नाव चलानेवाला है। कर्णधार लिया है। समन्तभद्राचार्यदेव। सबका नाविक है। चैतन्य की पूरी नाव, स्वभावसन्मुख की धारा चलती है, (उसमें) सम्यग्दर्शन है, वह नाविक है, खेवटिया है। खेवटिया समझे? पार करने के लिए... ओ...हो...! रत्नकरण्डश्रावकाचार में बहुत कथन किया है। उसके जैसा उत्तम कोई पदार्थ नहीं है... सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान नहीं, उसके बिना चारित्र नहीं, उसके बिना कुछ है ही नहीं और सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ सर्वस्व हो गया। समझे?

वह मोक्षनगर का पथिक बन जाता है, संसार की तरफ पीठ रखता है... लो, इसका अर्थ क्या? कि विकल्प आदि की उपेक्षा ही रखता है, आहा...हा...! निर्विकल्प स्वभाव की अपेक्षा रखता है और विकल्प की उपेक्षा करता है, बस! यह वस्तुस्वरूप है। इसके ख्याल में आना चाहिए न? अन्तरदृष्टि में आना चाहिए न? ऐसे का ऐसे बोले तो कहीं पता नहीं खाता। समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यपदार्थ, ज्ञायकभाव पूर्ण अमृत की, आनन्द की गाढ़ रुचि, गाढ़ रुचि। समझ में आया? जैसे मक्खी है, वह फिटकरी का स्वाद लेती है, फिटकरी होती है न? फिटकरी का स्वाद ले तो खारा लगता है, मिश्री की इतनी डली हो, इतनी (होवे उसकी) मिठास में ऐसी लग जाती है, ऐसी लग जाती है कि बालक खाते-खाते उसका हाथ लगाये, उसकी पंख मिश्री पर चिपक गयी होती है, (बालक का हाथ लगे) तो भी नहीं हटती... मिठास लग गयी है। फिटकरी की इतनी बड़ी डली हो और मिश्री की छोटी डली हो परन्तु ऐसी (मिठास) लगी है। समझ में आया? ऐसे ही आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की डली है। मक्खी

जैसे चतुरिन्द्रिय प्राणी को भी मिठास लगे, वहाँ से रुचि नहीं हटती तो आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की बड़ी डली है।

'चाखे रस पूरण करे, छूटे सुरिजन, सुरिजन टोरि' समझ में आया? यह आनन्दघनजी कहते हैं। 'चाखे रस क्यों करि छूटे?' भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के दर्शन हुए, प्रतीति हुई, स्वाद आया, वह 'चाखे रस क्यों करि छूटे?' 'सुरिजन, सुरिजन टोरि' देवता की टोली आये और कहे, ऐसा नहीं... (तो यह कहता है कि) चल, चल! हमको जो अनुभव हुआ है, वह चीज अन्यत्र कहीं है ही नहीं। समझ में आया? 'सोहागन लागि अनुभव प्रीत' सोहागन... सोहागन कहते हैं न यह? पतिव्रता स्त्री को सोहागन (सुहागन) पति हो न पति! उसे सौभाग्यवती कहते हैं। ऐसे 'सोहागन लागि अनुभव प्रीत' भगवान आत्मा, यह सुहागन प्रीत लगी। मस्तक पर स्वामी-आत्मा देखा। समझ में आया? यह आनन्दघनजी ने लिखा है। कुछ समझ में आया?

संसार की तरफ पीठ रखता है, उसके भीतर आठ लक्षण या चिह्न प्रगट हो जाते हैं... यह जरा लिखते हैं। संवेग होता है। धर्म का प्रेम, धर्म का वेग। (1) संवेग – ज्ञानी का स्वभाव की तरफ का वेग है। (2) निर्वेग – संसार की तरफ से उदास है। संवेग अस्ति है, (निर्वेद) वैराग्य है। समझ में आया? स्वभाव शुद्ध आत्मा की ओर का वेग, गति, वीर्य, रुचि अनुयायी वीर्य, शुद्धस्वभाव की रुचि हुई तो वीर्य, रुचि के अनुसार ही वीर्य गति करता है। इसका नाम संवेग कहते हैं। वैराग्य-संसार शरीर, भोग, सम्पूर्ण संसार से वैराग्य, (आत्मा में) संवेग, यहाँ (निर्वेद) **संसार की चारों गतियों में आकुलता है। यह शरीर कारागृह है, इन्द्रियों के भोग अतृप्तिकारक और नाशवन्त हैं।** ऐसा वैराग्य है। वैराग्य, हाँ! द्वेष नहीं (कि) यह विषय ऐसे हैं, यह शरीर ऐसा है; वे तो ज्ञेय हैं। उस ओर का प्रेम है, वह छूट गया है और स्वभाव की ओर का प्रेम हो गया है।

(3) निन्दा — स्वयं को जरा राग आता है तो अन्तर में खेद (होता है कि) यह क्या? अरे...! यह क्या? देखो! समकिती को भोग भी होते

हैं परन्तु उसमें निन्दा (करता) है। अरे! हमारी चीज में हम एकाकार होना चाहते हैं। उसमें यह क्या? निन्दा करता है।

(४) गर्ह्या — गुरु के समक्ष गर्ह्या करता है। समझ में आया? अपनी कमजोरी की निन्दा करता रहता है। देखो! स्वामी कार्तिकेय जी ने कार्तिकेयानुप्रेक्षा में लिखा है, आत्मा का भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ तो पर्याय में अपने को तुच्छ देखता है। अरे...! हमारी पर्याय बहुत अल्प है। कहाँ भगवान केवलज्ञानी की दशा, कहाँ सन्तों की चारित्र की रमणता की उग्र-उग्र स्वसंवेदन की दशा.... समझ में आया? यह पाँचवीं (गाथा में) लिया है न? प्रचुर स्वसंवेदन...। (समयसार में) कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं, हम पर तो हमारे गुरु की कृपा हुई है। हमें गुरु ने उपदेश दिया, भगवान तू शुद्धात्मा है न! लो, सम्पूर्ण बारह अंग इसमें आ गये। हमारे गुरु ने हमें, सर्वज्ञ से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त, अपरगुरु... यह पाँचवीं गाथा में आता है। वे सर्वज्ञ जो कि विज्ञानघन है और हमारे गुरु भी विज्ञानघन हैं। अल्प थोड़े ही हैं – ऐसा नहीं है। सभी विज्ञानघन लिया है – ऐसा संस्कृत में पाठ है। विज्ञानघन में मग्न है न? ऐसा लिया है। अन्तरमग्न, अन्तरनिमग्न – ऐसा पाठ है। अपर गुरु भगवान से लेकर हमारे गुरु विज्ञानघन में अन्तरनिमग्न हैं, वहाँ इतनी व्याख्या की। उन्होंने हम पर कृपा की, हमें उपदेश दिया। हमारी पात्रता थी – ऐसा नहीं लिया। ऐसा पाठ है। क्या (उपदेश) दिया?

भगवान! तू शुद्ध आत्मा है न! आहा...हा...! ऐसा उपदेश दिया और हमें प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ। मुनि है न! सम्यग्दृष्टि में स्वसंवेदन है, प्रचुर नहीं। मुनि है, चारित्रदशा है, प्रचुर स्वसंवेदन... प्रचुर स्वसंवेदन। ओ...हो...हो...! हमारे अनुभव से, हमारे वैभव से हम कहते हैं – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं कि थोड़ा भी दोष होवे तो कमी दिखती है। अरे...! हमारी पर्याय पूर्ण केवलज्ञान अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण दशा होनी चाहिए, (उसमें) यह क्या? समझ में आया? ऐसी निन्दा (करता

है)। उत्साह नहीं होता कि राग हो तो हो, भले हो – ऐसा नहीं। समझ में आया? परमात्मा शुद्ध चैतन्य की ओर का झुकाव है, तो राग की ओर की निन्दा-गर्ह्या होती है – ऐसा उसका लक्षण है। समझ में आया?

(5) उपशम — आत्मानुभव के प्रताप से उसमें सहज शान्तभाव जागृत रहता है। उपशम की व्याख्या की है। अकषायपरिणति सदा जागृत रहती है, सदा अकषायभाव साक्षी की जागृति है।

(6) भक्ति — सम्यग्दृष्टि जीव को जिनेन्द्रदेव, निर्ग्रन्थगुरु और जिनवाणी की गाढ़ भक्ति होती है। शुभभाव है न? शुभभाव। **स्तुति, वन्दना, पूजा और स्वाध्याय करता रहता है, उन्हें मोक्ष का सहकारी जानता है।** मोक्ष में ये निमित्तरूप भाव हैं। यह शुभभाव निमित्तरूप सहकारी है, मेरा स्वभाव, साधन है।

(7) वात्सल्य — साधर्मी भाई और बहिनों के प्रति... प्रेम है। **धार्मिक प्रेम रखता है...** धार्मिक के साथ की बात है न! उसमें क्या है? है? साधर्मी की विशेष दशा देखकर उसे द्वेष नहीं आता। (उसे ऐसा लगता है कि) ओ...हो...! मुझे भी उग्रता में जाना है, उन्हें उग्रता हो गयी। धन्य अवतार, भाई! ऐसा नहीं है कि हमारा शिष्य क्यों बढ़ गया? उसे तो चार ज्ञान हो गये और अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान की तैयारी हो गयी। बहुत अच्छा, अलौकिक बात है! हमें जो चाहिए, वह उसे प्राप्त होता है, बहुत अच्छा (–ऐसा) प्रेम रखता है। साधर्मी के प्रति उसे (प्रेम आता है)। (अपने से) अधिक देखकर द्वेष नहीं आता। लोगों में तो अपने से अधिक पैसा देखे तो द्वेष आता है। अपने पास पाँच लाख, और इसके पास दस लाख (हो गये)। मलूकचन्दभाई! उनके पुत्र के पास एक करोड़, दो करोड़ हैं न! तो भी दूसरे के प्रति द्वेष आता है कि हमारे पास दो करोड़ और उनके पास पाँच करोड़! – ऐसा द्वेष आता है। यहाँ तो साधर्मी की विशेष गुण की दशा देखकर प्रेम आता है। ओ...हो...! धन्य अवतार!! समझ में आया? ऐसा प्रेम है। उसमें नहीं आया? '**न धर्मो धार्मिकैः बिना**' रत्नकरण्डश्रावकाचार.... धर्म कहीं धर्मी के बिना

नहीं होता, धर्मी जीव के बिना धर्म नहीं होता तो जिसे धर्मी के प्रति प्रेम नहीं है, उसे धर्म के प्रति प्रेम नहीं है। रत्नकरण्डश्रावकाचार... आचार्यों ने तो वस्तु के स्वरूप का महाकथन ऐसी पद्धति से किया है। वात्सल्य है।

(8) अनुकम्पा — प्राणीमात्र के प्रति दया है। किसी के साथ **अन्याय का व्यवहार नहीं करता।** ऐसा लिया है। फिर लिया है (कि) सम्यग्दृष्टि को 41 प्रकृतियों का बन्ध नहीं है। **वह तो देवगति या मनुष्यगति में ही जन्म लेता है। यदि तिर्यञ्च या मनुष्य सम्यक्त्वी हुआ तो स्वर्ग का देव होता है। यदि नारकी व देव सम्यक्त्वी हुआ तो उत्तम मनुष्य होता है।**

सम्यक्त्व होने के पहले यदि मनुष्य या तिर्यञ्च की आयु बाँध ली हो तो भोगभूमि में तिर्यञ्च व मनुष्य जन्मता है। और जो नरक का आयुष्य बाँध लिया हो तो सम्यक्त्व सहित पहले नरक में जन्मता है। वहाँ भी समभाव से दुःख-सुख भोग लेता है। सम्यक्त्वी सदा सुखी रहता है।

बाहर नारकीकृत दुःख भोगत, अन्तरसुख में गटागटी... लो, यह लोग कहते हैं, समकित अर्थात् श्रद्धा... ऐसा नहीं, भगवान! देखो! बाहर नारकीकृत दुःख भोगत, अन्तरसुख में गटागटी... अन्दर आनन्द के प्रेम की अधिकता में उसे आनन्द है। जितना कषायभाव है, उतना दुःख है। इसकी गौणता करके स्वयं की अधिकता स्वभाव की ओर करता है। समझ में आया? (सम्यग्दृष्टि) मनुष्य, नरक में जाये तो भी सुखी है और मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक में जाये तो भी दुःखी है। वह यहाँ कहते हैं। कहा है न?

'**सम्माइट्ठी-जीवडई, दुग्गई-गमणु ण होइ**' और कदाचित् जाये तो क्या है? यह तो... जाता है... प्रति समय जड़कर्म की निर्जरा होती है और राग की अशुद्धता की भी निर्जरा होती है। 'निर्जरा अधिकार' में आया है न? भाव-अशुद्धि की भी निर्जरा होती है और द्रव्यकर्म की भी निर्जरा होती है। पहली गाथा में द्रव्यकर्म की निर्जरा कही, दूसरी गाथा

में भावकर्म की (निर्जरा) कही, प्रति क्षण अशुद्धता खिरती है और द्रव्यकर्म के रजकण भी खिरते हैं। स्वभाव तरफ की अधिकदशा है न? तो कहते हैं....।

रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा है... दृष्टान्त दिया है। **सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव व्रतरहित होने पर भी...** लो! भगवान आत्मा, जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन सूर्य प्रगट हुआ, सम्यग्दर्शन रवि प्रगट हुआ... (वह) **व्रतरहित होने पर भी ऐसे पाप नहीं बाँधता जिनसे वह नारकी हो...** ऐसा पाप है नहीं। **तिर्यंच हो, नपुंसक हो, स्त्री हो, नीचकुल में जन्म ले...** अरे...! **अंगहीन हो...** ऐसा कर्म नहीं बाँधता। अपने पूर्ण परमात्मस्वभाव का दृष्टि में भान हुआ फिर बाहर में अंगहीन मिले – ऐसा पुण्य किसलिए बाँधेगा? समझ में आया? **अल्प आयुवाला...** हो ऐसा नहीं है और **दरिद्री** नहीं होता।

सम्यग्दर्शन से पवित्र जीव ओज... ओज... ओज... ओजस्वी पराक्रमी दिखता है। हमाल (मजदूर) जैसा नहीं दिखता। अपने पुरुषार्थ का पराक्रम अन्दर से, हाँ! बाहर के पराक्रम की बात नहीं है। **तेज...** प्रताप, अन्तर प्रताप (होता है)। प्रभुत्व शक्ति खिली है न? प्रभुत्व शक्ति का अर्थ आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने ऐसा (किया है कि) स्वतन्त्रता से शोभित अखण्ड प्रताप, जिसका प्रताप कोई खण्डित न कर सके (ऐसी) प्रभुत्वशक्ति आत्मा की है। ऐसे शक्तिवान का भान हुआ तो अपना प्रताप से दूसरे का प्रताप उसमें लागू नहीं पड़ता। कहो, समझ में आया?

विद्या... देखो! सम्यग्दृष्टि अच्छी विद्या में उत्पन्न होता है, ओज लेकर गया है न! **वीर्य...** पुरुषार्थ... पुरुषार्थ-बल। **यश...** सम्यग्दृष्टि पुण्य बाँधे, उसमें यश ही होता है। क्या वह पापी है? समझ में आया? श्रेणिक (राजा) सम्यग्दृष्टि तीर्थंकर नामकर्म बाँधकर गये हैं। बाहर निकलेंगे (फिर) तीर्थंकर (होंगे)। ओहो...हो...! माता के गर्भ में आने से पहले छह महीने पूर्व देव आयेंगे। अहो! माता! हे रत्नकूखधारिणी! रत्न को कूख में धरनेवाली माता-जननी, आपके गर्भ में भगवान आनेवाले

हैं। बड़ा व्यक्ति आवे, तब पहले सफाई करने नहीं जाते? कोई मनुष्य आनेवाला हो तो दो घण्टे-चार घण्टे पहले जमीन साफ करते हैं, पानी का गोला करते हैं, करते हैं या नहीं यहाँ? राजा आते हों तो सफाई करते हैं। मकान-बकान साफ करते हैं। ऐसे कोई आयेगा? तीन लोक का नाथ भले नरक में से आते हैं। आहा...हा...! माता! तुम्हारा गर्भ साफ करने आयेंगे। कौन आते हैं? त्रिलोकनाथ भगवान! इतना पुण्य! सम्यग्दर्शनसहित क्या नीच गति, हल्की गति में जायेगा और हल्की गति-नरक में गये तो भी कर्म की निर्जरा के कारण गये हैं – ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

वृद्धि... वृद्धि... वृद्धि...। उसे शुद्धि की वृद्धि ही होती है, बाह्य के पुण्य की भी वृद्धि होती है। **और विजय प्राप्त करनेवाला...** है। स्वयं की विजय है, हम कभी गिरनेवाले नहीं हैं, हमारी विजय है, हमारी विजय है, हमारी ध्वजा ऊपर है। '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' राजा की ध्वजा ऊपर होती है न? इसी प्रकार हमारी जय है, विजय है। राग की, कर्म की पराजय है। मूढ़ (ऐसा कहते हैं) ऐसे कर्म आते हैं, मुझे मार डालते हैं। मूर्ख...! कर्म में तू शक्ति मानता है और तुझमें शक्ति नहीं है? समझ में आया? वह तो परद्रव्य है, उसमें शक्ति (मानता है) अरे...! भगवान! ऐसा कर्म है.... मैं ऐसा पुरुषार्थ करूँ कि क्षण में केवलज्ञान प्राप्त करूँ – ऐसा क्यों नहीं लेता? समझ में आया? मेरे आत्मा में एक क्षण में ऐसा उग्ररूप से झुक जाऊँ कि सर्वज्ञपद (प्रगट हो जाये) सर्वज्ञपद पड़ा है, प्राप्त की प्राप्ति है। उसे ऐसी शंका नहीं होती कि मुझे कर्म आयेगा और अमुक आयेगा – ऐसी शंका धर्मी को नहीं होती, वृद्धि ही होती है। विजय प्राप्त (करनेवाला है)।

महाकुलवान.... सम्यग्दृष्टि महाकुल में उत्पन्न होता है। हल्के कुल में (नहीं आता)। **महाधनवान...** बाद की बात है, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद महाधनवान (होता है)। **मनुष्यों में मुख्य होता है।** यहाँ आत्मा को मुख्य किया तो बाहर में भी सबमें मुख्य क्यों नहीं होगा? ऐसा पुण्यानुबन्धी पुण्य बँध जाता है। कहो, समझ में आया? ●

द्रव्यानुयोग

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

कर्त्ताकर्म क्रिया द्वार प्रवचन

अब 45 वे श्लोक का 27वां काव्य कहते है

नयज्ञान द्वारा वस्तुस्वरूप जानकर समरस भाव में रहनेवालों की प्रशंसा :-

प्रथम नियत नय दूजी विवहार नय,
दुहूकौ
ज्यौ
चंचल सुभाव लोकालोकलौ
ऐसी नयकक्ष ताकौ
समरसी भए एकतासौ
महामोह नासि सुद्ध-अनुभौ
बल परगासि सुखरासि मांहि रले है

अर्थ:- पहला निश्चय औ
द्रव्य के गुण-पर्यायों के साथ विस्तार किया जाय तो अनंत भेद हो जाते है
भी उपजती है
जीव ऐसी नय कोटि का पक्ष छोड़कर समता-रस ग्रहण करके आत्मस्वरूप की एकता को नहीं छोड़ते, वे महामोह को नष्ट करके, अनुभव के अभ्यास से निजात्म बल प्रगट करके, पूर्ण आनंद में लीन होते है

काव्य - 27 पर प्रवचन

देखो, पंडित बनारसीदासजी क्या कहते है
जानकर समरसभाव में रहने वाले को प्रशंसा इस काव्य में करते है
कहते है

क्या होता है

यह तो कर्त्ता-कर्म का अधिकार है

है

का अथवा परमाणु का कुछ कार्य नहीं कर सकता। जीव के साथ जड़ कर्मों का बंधन होता है

द्रव्य स्वतंत्र है

जिसको सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकर देव द्वारा कथित आत्मतत्त्व का भान नहीं है

मिथ्यादृष्टि-बहिरात्मा जड़कर्मों को बाँधता है

ही नहीं है

उसके परिणाम कर्म बंधन में निमित्त होते है

अरे! जो एक विकल्प को भी अपना मानता है

कर्त्ता होता है

परिपूर्ण हूँ-ऐसा जो निश्चयनय का मन के संग से उत्पन्न हुआ विकल्प

है है

पहला निश्चय औ

गुण-पर्यायों के साथ विस्तार किया जावे तो अनन्त भेद हो जाते है

जै

उपजती है

ऐसी नय कक्षा को छोड़कर समतारस ग्रहण करके आत्मस्वरूप की एकता नहीं छोड़ते वे महामोह का नाश करके अनुभव के अभ्यास के निजात्मबल प्रगट करके पूर्ण आनंद में लीन होते है

जितने नय है

विचार करते है

है में जाया जा सकता है

निर्विकल्प चीज है

भगवान सर्वज्ञदेव ने जो अनन्तज्ञान, अनन्त आनंद आदि गुण प्रगट

किये है
गुण विद्यमान है
नहीं है
है
पर समरसीभाव प्रकट होता है
है
करके, उस विकल्प को छोड़कर समभाव द्वारा आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद ले वहाँ विकल्प का नाश हो जाता है
छूट जाता है
धर्म का मुँह बड़ा है
विकल्प द्वारा भी धर्म का ग्रहण नहीं होता है
है
प्रगट होता है
जाने से अन्दर से वीतराग समरसी भाव झरता है
में विकल्प का दोपना नहीं आता। अन्दर की एकाग्रता में इस विकल्प को नहीं आने देता।

यह तो वीतराग भगवान के पास से आई हुई वाणी को संत आड़तिया होकर जगत में प्रसिद्ध करते है

अपने को राग की क्रिया का कर्त्ता मानना तो महामिथ्यात्व है
देह औ
समुद्र असंख्य योजन में व्यापक है
प्रकार इस चै
आनंद, अनन्त वीर्य इत्यादि अनंत रत्न विद्यमान है
अन्यत्र खोजने जाता है
मै
जो उनकी दृष्टि छोड़कर शुद्ध स्वरूप का अनुभव करता है
के अभ्यास से निजात्मबल प्रगट करके पूर्ण आनन्द में लीन होता है

(पुरुषार्थ) को स्वभाव सन्मुख झुकाकर आत्मधर्म का प्रकाश करता है
वह अपने स्वभाव के बल से होता है
आत्मबल नहीं है

आत्मा में एक नहीं, बल्कि अनंत गुण है
अनन्त पर्यायें प्रकट करने की सामर्थ्य है
अनुभव करने में निज का बल चाहिये। जो पुण्य-पाप का बल है
निज बल-वीर्य नहीं था, वह तो नपुंसकता है
पै
दु:खरूपभाव है
ाक इस भाव को अपना मानना महा नपुंसकता है

अरे! जब सत्य बात इसके कान में ही नहीं पड़ती तो यह कब तो समझे औ
पाले, दान करे, भक्ति इत्यादि समस्त देह की औ
परन्तु उससे क्या? इससे धर्म की दशा प्रकट नहीं होती। तो धर्म की दशा किस प्रकार प्रकट होती है **'महामोह नासि, शुद्ध अनुभव अभ्यासि, निज बल परगासि'**.... परद्रव्य में सुख मानता था, पुण्य-पाप के विकल्प को अपना मानता था वह महामोह था। जब उसका नाश करके अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करता है
सम्यग्दर्शन प्रकट होता है
यह धर्म की प्रथम दशा है

....'सुखशशि मांहे ग्ले है भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दकंद है
समरस में सम्यग्दर्शन प्रकट होता है

जै
कोई चिरायता मिश्री हो जाता है
आनन्द का अनुभव नहीं हो औ
इसमें क्या क्षायिक हो जाता है

क्रमशः

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :- हम तो मुक्ति के लिये पुरुषार्थ करते हैं, लेकिन नियमसार में मुनिराज कहते हैं कि—मुक्ति में और संसार में कोई अन्तर नहीं है, तो वह कैसे ? कृपया समझाइये।

समाधान :- द्रव्य की अपेक्षा से ऐसा कहा है। द्रव्य जैसा शुद्ध मुक्ति में है वैसा ही शुद्ध संसार में भी है। वह शुद्धता से भरा है। जैसा भगवान का द्रव्य है, वैसा अपना द्रव्य है। मुक्ति की पर्याय प्रगटती है लेकिन द्रव्य तो वैसा का वैसा ही रहता है। सब विकल्प तोड़कर भीतर में जाता है तो मुक्त द्रव्य देखने में आता है। द्रव्य मुक्त ही है, जबकि बन्धन और मुक्ति पर्याय में होते हैं।—ऐसा कहते हैं तो 'पुरुषार्थ नहीं करना' ऐसा अर्थ किया है। द्रव्य तरफ देखो तो मुक्तस्वरूप ही देखने में आता है। उसको बन्धन या विभाव हुआ ही नहीं। यदि द्रव्य में विभाव हो तो कभी छूटे ही नहीं, विभाव ही स्वभाव हो जाये, अर्थात् यदि विभाव भीतर में चला जाये तो वह स्वभाव हो जाये। लेकिन विभाव भीतर में है ही नहीं, इसलिए द्रव्य मुक्त ही है।

आचार्यदेव पर्याय को गौण करके कहते हैं कि हम तो द्रव्य को देखते हैं, पर्याय के ऊपर दृष्टि नहीं देते। पर्याय को गौण करके और द्रव्य को मुख्य करके सिद्धसमान मुक्तस्वरूप आत्मा को देखते हैं तो उसमें कुछ भी भेद देखने में आता ही नहीं। द्रव्य ऐसा मुक्तस्वरूप है, तो भी आचार्य पुरुषार्थ करते हैं। मुनिराज छठ्ठे-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं और कहते हैं कि संसार और मुक्ति में कुछ भेद नहीं है। फिर भी पुरुषार्थ करते हैं। कोई मुनिराज तो श्रेणि चढ़कर केवलज्ञान प्रगट करते हैं। ऐसा पुरुषार्थ करते हैं फिर भी आचार्य कहते हैं कि मुक्ति और संसार में भेद नहीं है, क्योंकि द्रव्य-अपेक्षा से देखो तो आत्मा मुक्तस्वरूप ही दिखने में आता है।

प्रश्न :- आज प्रात: पूज्य गुरुदेवश्री के टेप (प्रवचन) में द्रव्येन्द्रिय,

भावेन्द्रिय और इन्द्रिय के विषयभूत पदार्थ की बात आयी थी। उसमें अरिहन्त भगवान की दिव्यध्वनि को भी इन्द्रिय के विषयभूत पदार्थ में लिया है, किन्तु प्रवचनसार की 80वीं गाथा में आता है कि—जो भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, उसका मोह क्षय को प्राप्त होता है, तो इस कथन को स्पष्टरूप से समझायें।

समाधान :- यह बात दूसरी है और वह दूसरी बात है। दोनों की अपेक्षा अलग-अलग है। जितेन्द्रिय-स्वरूप आत्मा—द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उनके विषयभूत पदार्थ—सबसे भिन्न है। दृष्टि का विषयभूत आत्मपदार्थ, भावेन्द्रिय—क्षयोपशमज्ञान-जितना भी नहीं है, वह तो पूर्णस्वरूप है। आत्मा में ज्ञात कम हो गया अथवा उसकी वृद्धि हो गयी —ऐसी कोई अपेक्षा लागू नहीं होती; वह तो चैतन्यस्वरूप पूर्ण शुद्धात्मा है, इसलिए इन द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उनके विषयों से आत्मा को भिन्न देखो। उनसे आत्मा को भिन्न देखने पर भेदज्ञान एवं स्वानुभूति होती है; उसी को जितेन्द्रय कहने में आता है।

प्रवचनसार में कहा कि—भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को देखनेवाला अपने को देखता है; तो वहाँ निमित्त-उपादान का सम्बन्ध दर्शाया है। अनादिकाल से जीव ने आत्मा को पहिचाना; जब भगवान जैसा प्रबल निमित्त मिलता है, तब आत्मा की पहिचान होती है; अर्थात् भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को समझ ले तो अपना आत्मा समझ में आता है कि—जैसा भगवान का आत्मा वैसा मेरा आत्मा।—ऐसे निमित्त उपादान का सम्बन्ध दर्शाते हैं।

यहाँ ऐसा दर्शाते हैं कि तू सबसे भिन्न है। भगवान की दिव्यध्वनि सुनने में राग आता है, वह प्रशस्तराग है; उस प्रशस्तराग को तोड़कर स्वरूप में लीन होते हैं, तब मुनि वीतराग हो जाते हैं और केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं; परन्तु इस बीच दिव्यध्वनि श्रवण करने का राग आता है, वहाँ भगवान राग का विषयभूत पदार्थ है।

द्रव्यदृष्टि से आत्मा राग से भिन्न ही है; आत्मा पूर्ण वीतरागस्वरूप है, उसे तू देख। ये रागादि तो सब बाह्य हैं और बाह्यलक्ष्य से ही दिव्यध्वनि श्रवण आदि का राग आता है, इसलिए तू द्रव्यदृष्टि से पूर्ण स्वरूप को यथार्थ देख। सूक्ष्म प्रशस्तराग भी आत्मा का स्वरूप नहीं है। उपयोग बाहर जाने से राग आता है और स्वरूप में लीन हो जाये तो राग नहीं होता; परन्तु बीच में राग आये बिना नहीं रहता। जबतक स्वरूप को समझकर पूर्ण वीतरागदशा नहीं होती, तब तक छद्मस्थ को प्रशस्तराग आता है, भगवान की दिव्यध्वनि श्रवण करने का राग आता है।—ऐसा तू जान।

तू भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को समझ, तो तुझे अपना स्वरूप समझ में आयेगा—ऐसा निमित्त-उपादान का सम्बन्ध है। अनादिकाल से जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ, उस जीव को भगवान के द्वारा देशनालब्धि प्राप्त हो तो सम्यग्दर्शन प्रगट होने में भगवान को निमित्त कहने में आता है। उपादान तो अपना है, अपने ही पुरुषार्थ से जीव समझता है; भगवान कुछ समझा नहीं देते; फिर भी वे निमित्त बनते हैं। भगवान की वाणी सुने तब अपना आत्मा समझ में आता है और भगवान के आत्मा को समझे तो अपना आत्मा समझ में आता है,—ऐसा निमित्त-उपादान का सम्बन्ध है। द्रव्यदृष्टि में राग नहीं है, परन्तु पर्याय में राग होता है, प्रशस्त राग आता है, इसलिए द्रव्यदृष्टि और पर्याय का ज्ञान साथ में रखकर विचार करना चाहिए।

क्रमशः

सत्साहित्य प्रकाशन

तीर्थधाम मङ्गलायतन के सत्साहित्य प्रकाशन की शृंखला में पाठकों की रुचि और माँग के अनुसार **मंगल भक्ति सुमन** तथा **जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** दोनों का पुनः प्रकाशन किया जा रहा है।

अतः आपसे अनुरोध है कि आप अपनी प्रतियाँ पूर्व में आरक्षित करावें।

सम्पर्क करें - पण्डित अभिषेक शास्त्री-9997996346

प्रथमानुयोग

तीर्थधाम चिदायतन

....गतांक से आगे

हस्तिनापुर का अतिशयकारी इतिहास

धार्मिक नगरी हस्तिनापुर का वर्णन उत्तरपुराण से

श्री अरनाथ तीर्थंकर के बाद दो सौ करोड़ बत्तीस वर्ष व्यतीत हो जाने पर सुभौम चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ था। यह सुभौम, समस्त शत्रुओं को नष्ट करने वाला था और चक्रवर्तियों में आठवाँ चक्रवर्ती था। उसकी साठ हजार वर्ष की आयु थी; अट्ठाईस धनुष ऊँचा शरीर था; सुवर्ण के समान उसकी कान्ति थी; वह लक्ष्मीमान था; इक्ष्वाकु वंश का सिंह था— शिरोमणि था, अत्यन्त स्पष्ट दिखने वाले चक्र आदि शुभ लक्षणों से सुशोभित था। तदनन्तर बाकी के रत्न तथा नौ निधियाँ भी प्रकट हो गईं इस प्रकार छह खण्ड का आधिपत्य पाकर वह चक्रवर्ती के रूप में प्रकट हुआ। जिस प्रकार इन्द्र स्वर्ग में निरन्तर दिव्य भोगों का उपभोग करता रहता है, उसी प्रकार सुभौम चक्रवर्ती भी चक्रवर्ती पद में प्राप्त होनेयोग्य दश प्रकार के भोगों का चिरकाल तक उपभोग करता रहा। सुभौम का एक अमृतरसायन नाम का हितैषी रसोइया था, उसने किसी दिन बड़ी प्रसन्नता से उसके लिए रसायना नाम की कढ़ी परोसी। सुभौम ने उस कढ़ी के गुणों का विचार तो नहीं किया, सिर्फ उसका नाम सुनने मात्र से वह कुपित हो गया। इसी के बीच उस रसोइया के शत्रु ने राजा को उल्टी प्रेरणा दी जिससे क्रोधवश उसने उस रसोइया को दण्डित किया। इतना अधिक दण्डित किया कि वह रसोइया उस दण्ड से म्रियमाण (मरणासन्न) हो गया। उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर निदान किया कि मैं इस राजा को अवश्य मारूँगा। थोड़े से पुण्य के कारण वह मरकर ज्योतिर्लोक में विभंगावधिज्ञानरूपी नेत्रों को धारण करनेवाला देव हुआ। पूर्व वैर का स्मरण कर वह क्रोधवश राजा को मारने की इच्छा करने लगा। उसने देखा कि यह राजा जिह्वा का लोभी है। अतः वह एक व्यापारी का वेश रख मीठे-मीठे फल देकर प्रतिदिन राजा की सेवा करने लगा।

किसी एक दिन उस देव ने कहा कि महाराज! वे फल तो अब

समाप्त हो गये। राजा ने कहा कि यदि समाप्त हो गये तो फिर से जाकर उन्हें फलों को ले आओ। उत्तर में देव ने कहा कि वे फल नहीं लाये जा सकते। पहले तो मैंने उस वन की स्वामिनी देवी की आराधना कर कुछ फल प्राप्त कर लिये थे। यदि आपकी उन फलों में आसक्ति है—आप उन्हें अधिक पसन्द करते हैं तो आप मेरे साथ वहाँ स्वयं चलिये और इच्छानुसार उन फलों को खाइये। राजा ने उसके मायापूर्ण वचनों का विश्वास कर उसके साथ जाना स्वीकृत कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि **जिनका पुण्य क्षीण हो जाता है, उनकी विचार-शक्ति नष्ट हो जाती है।** यद्यपि मंत्रियों ने उस राजा को रोका था कि आप मत्स्य की तरह रसना इन्द्रिय के लोभी हो यह राज्य छोड़कर क्यों नष्ट होते हो तथापि उस मूर्ख ने एक न मानी। वह उनके वचन उल्लंघन कर जहाज द्वारा समुद्र में जा घुसा। उसी समय उसके घर से जिनमें प्रत्येक की एक-एक हजार यक्ष रक्षा करते थे, ऐसे समस्त रत्न निधियों के साथ-साथ घर से निकल गये। यह जानकर वैश्य का वेश रखनेवाला शत्रु, भूतदेव अपने शत्रु राजा को समुद्र के बीच में ले गया। वहाँ ले जाकर उस दुष्ट ने पहले जन्म का अपना रसोइया का रूप प्रकट कर दिखाया और अनेक दुर्वचन कहकर पूर्वबद्ध वैर के संस्कार से उसे विचित्र रीति से मार डाला। सुभौम चक्रवर्ती भी अन्तिम समय रौद्रध्यान से मरकर नरकगति में उत्पन्न हुआ सो **ठीक ही है क्योंकि दुर्बुद्धि से क्या नहीं होता है?** सहस्रबाहु लोभ करने से अपने पुत्र के साथ-साथ तिर्यंच गति में गया और हिंसा में तत्पर रहनेवाले जमदग्नि ऋषि के दोनों पुत्र अधोगति—नरकगति में उत्पन्न हुए।

इसीलिए **बुद्धिमान लोग इन राग-द्वेष दोनों को छोड़ देते हैं क्योंकि इनके त्याग से ही विद्वान पुरुष वर्तमान में परमपद प्राप्त करते हैं, भूतकाल में प्राप्त करते थे और आगामी काल में प्राप्त करेंगे।** देखो, आठवाँ चक्रवर्ती सुभौम यद्यपि सिंह के समान एक था—अकेला ही था तथापि वह समस्त पृथिवी का स्वामी हुआ। उसने अपने पिता का वध करनेवाले जमदग्नि के दोनों पुत्रों को मारकर अपनी कीर्ति से समस्त दिशाएँ उज्ज्वल कर दी थीं किन्तु स्वयं दुर्नीति के वश पड़कर नरक में उत्पन्न हुआ था। सुभौम

चक्रवर्ती का जीव पहले तो भूपाल नाम का राजा हुआ फिर असह्य तप-तपकर महाशुक्ल स्वर्ग में, सोलह सागर की आयुवाला देव हुआ। वहाँ से च्युत होकर परशुराम को मारनेवाला सुभौम नाम का सफल चक्रवर्ती हुआ और अन्त में नरक का अधिपति हुआ।

अथानन्तर इन्हीं के समय नन्दिषेण बलभद्र और पुण्डरीक नारायण ये दोनों ही राजपुत्र हुए हैं। इनमें से पुण्डरीक का जीव तीसरे भव में सुकेतु के आश्रय से शल्यसहित तप कर आयु के अन्त में पहले स्वर्ग में देव हुआ था, वहाँ से च्युत होकर सुभौम चक्रवर्ती के बाद छह सौ करोड़ वर्ष बीत जाने पर इसी भरतक्षेत्र सम्बन्धी चक्रपुर नगर के स्वामी इक्ष्वाकुवंशी राजा वरसेन की लक्ष्मीमती रानी से पुण्डरीक नाम का पुत्र हुआ था तथा इन्हीं राजा की दूसरी रानी वैजयन्ती से नन्दिषेण नाम का बलभद्र उत्पन्न हुआ था। उन दोनों की आयु छप्पन हजार वर्ष की थी, शरीर छब्बीस धनुष ऊँचा था, दोनों की आयु नियत थी और अपने तप से संचित हुए पुण्य के कारण उन दोनों की आयु का काल सुख से व्यतीत हो रहा था। किसी एक दिन इन्द्रपुर के राजा उपेन्द्रसेन ने अपनी पद्मावती नाम की पुत्री पुण्डरीक के लिए प्रदान की। अथानन्तर पहले भव में जो सुकेतु नाम का राजा था, वह अत्यन्त अहंकारी दुराचारी और पुण्डरीक का शत्रु था। वह अपने द्वारा उपार्जित कर्मों के अनुसार अनेक भवों में घूमता रहा। अन्त में उसने क्रम-क्रम से कुछ पुण्य का संचय किया था, उसके अनुरोध से वह पृथिवी को वश करनेवाला चक्रपुर का निशुम्भ नाम का अधिपति हुआ। उसकी आभा ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के मण्डल के समान थी। वह इतना तेजस्वी था कि दूसरे के तेज को बिल्कुल ही सहन नहीं करता था। जब उसने पुण्डरीक और पद्मावती के विवाह का समाचार सुना, तो वह बहुत ही कुपित हुआ। उसने सब सेना तैयार कर ली, वह शत्रुओं को मारने वाला था, नारकियों से भी कहीं अधिक निर्दय था, और अखण्ड पराक्रमी था। पुण्डरीक को मारने की इच्छा से वह चल पड़ा। जिसका तेज निरन्तर बढ़ रहा है, ऐसे पुण्डरीक के साथ उस निशुम्भ ने

चिरकाल तक बहुत प्रकार का युद्ध किया और अन्त में उसके चक्ररूपी वज्र के घात से निष्प्राण होकर वह अधोगति में गया—नरक में जाकर उत्पन्न हुआ। सूर्य चन्द्रमा के समान अथवा मिले हुए दो लोकपालों के समान वे दोनों अपनी प्रभा से दिग्मण्डल को व्याप्त करते हुए चिरकाल तक पृथिवी का पालन करते रहे। वे दोनों ही भाई बिना बाँटी हुई लक्ष्मी का उपभोग करते थे, परस्पर में परम प्रीति को प्राप्त थे और ऐसे जान पड़ते थे, मानो किसी एक मनोहर विषय को देखते हुए अलग-अलग रहने वाले दो नेत्र ही हों। उन दोनों की राज्य से उत्पन्न हुई तृप्ति, तीन भव से चले आये पारस्परिक प्रेम से उत्पन्न होने वाली तृप्ति के एक अंश को भी नहीं प्राप्त कर सकी थी। भावार्थ - उन दोनों का पारस्परिक प्रेम राज्य-प्रेम से कहीं अधिक था। पुण्डरीक ने चिरकाल तक भोग भोगे और उनमें अत्यन्त आसक्ति के कारण नरक की भयंकर आयु का बन्ध कर लिया। वह बहुत आरम्भ और परिग्रह का धारक था, अन्त में रौद्र ध्यान के कारण उसकी मिथ्यात्वरूप भावना भी जागृत हो उठी, जिससे मरकर वह पापोदय से तम:प्रभा नामक छठवें नरक में प्रविष्ट हुआ। उसके वियोग से नन्दिषेण बलभद्र को बहुत ही वैराग्य उत्पन्न हुआ, उससे प्रेरित हो उसने शिवघोष नामक मुनिराज के पास जाकर संयम धारण कर लिया। उसने निर्द्वन्द्व होकर बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार का शुद्ध तपश्चरण किया और कर्मों की मूलोत्तर प्रकृतियों का नाश कर मोक्ष प्राप्त किया। ये दोनों ही तीसरे भव में राजपुत्र थे, फिर पहले स्वर्ग में देव हुए, तदनन्तर एक तो नन्दिषेण बलभद्र हुआ और दूसरा निशुम्भ प्रतिनारायण का शत्रु पुण्डरीक हुआ। यह तीन खण्ड के राजाओं—नारायणों में छठवाँ नारायण था।

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध भगवद्गुणभद्राचार्य प्रणीत त्रिषष्टि लक्षण महापुराण संग्रह में अरनाथ तीर्थंकर चक्रवर्ती, सुभौम चक्रवर्ती, नन्दिषेण बलभद्र, पुण्डरीक नारायण और निशुम्भ प्रतिनारायण के पुराण का वर्णन करने वाला पैंसठवाँ पर्व समाप्त हुआ। ●

करणानुयोग

गुणस्थान सम्बन्धी चर्चा

मिच्छो सासण मिस्सो, अविरदसम्मो य देसविरदो य।
विरदा पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्टि सुहुमो य॥
उवसंत खीणमोहो सजोगमेवलिजिणो अजोगी य।
चउदस जीव समासा कमेण सिद्धा य णादव्वा॥

(नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती रचित गोम्मटसार जीवकाण्ड से)

मोह और योग के निमित्त से जीव के श्रद्धा और चारित्र गुण की होनेवाली तारतम्यरूप अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हैं। गुणस्थान के निम्नलिखित चौदह भेद हैं —

1. मिथ्यात्व	2. सासादन	3. सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र)
4. अविरतसम्यक्त्व	5. देशविरत	6. प्रमत्तविरत
7. अप्रमत्तविरत	8. अपूर्वकरण	9. अनिवृत्तिकरण
10. सूक्ष्मसांपराय	11. उपशांतमोह	12. क्षीणमोह
13. सयोगकेवली	14. अयोगकेवली।	

भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से गुणस्थानों का विभाजन—

1. अज्ञानी और ज्ञानी की अपेक्षा : पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर तीसरे सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थानपर्यन्त सर्व जीव मिथ्या श्रद्धान के धारक होने से अज्ञानी हैं, क्योंकि उन्हें सम्यग्दर्शन नहीं है। यहाँ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि दूसरे और तीसरे गुणस्थानवर्ती जीव भव्य ही होते हैं और उनका मोक्ष जाना भी निश्चित है।

चौथे अविरतसम्यक्त्व गुणस्थान से चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थानपर्यन्त सभी जीव नियम से ज्ञानी अर्थात् सम्यग्ज्ञानी / यथार्थ ज्ञानी हैं (क्योंकि वे वस्तुस्वरूप को यथा जानते हैं, उन्हें निजात्मा का ज्ञान तथा अनुभव है)।

2. अल्पज्ञ और सर्वज्ञ की अपेक्षा : प्रथम गुणस्थान से लेकर बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान पर्यन्त के सभी जीव नियम से अल्पज्ञ ही हैं।

तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानवर्ती परमगुरु अथवा अरहन्त परमात्मा केवलज्ञान के धारक होते हैं (अत: वे सर्वज्ञ ही हैं)। सर्वज्ञ जीव पूर्ण ज्ञानी होते हैं। क्षायोपशमिक ज्ञान कभी पूर्ण नहीं होता है और केवलज्ञान कभी अपूर्ण नहीं होता; ऐसा नियम है।

3. श्रावक की अपेक्षा : चतुर्थ तथा पंचम गुणस्थानवर्ती जीवों को श्रावक कहते हैं।

4. रागी और वीतरागी की अपेक्षा :

(1) मात्र राग-द्वेष परिणामों से सहित प्रथम तीनों गुणस्थानवर्ती जीव वीतरागभाव से रहित मात्र रागादि परिणाम वाले हैं, मोक्षमार्ग के विराधक हैं।

(2) चौथे से दसवें गुणस्थान पर्यन्त के सातों गुणस्थानवर्ती जीव राग तथा वीतरागरूप मिश्र परिणामों के धारक साधक जीव हैं।

(3) ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थानवर्ती सभी जीव नियम से मात्र वीतराग परिणाम के धारक ही होते हैं।

5. दु:ख और सुख की अपेक्षा से चार प्रकार का विभाजन :

(1) पहले से तीसरे गुणस्थान पर्यन्त सभी जीव दु:खी ही हैं।

(2) चौथे से दसवें गुणस्थानवर्ती सभी जीव कथंचित् दु:खी भी हैं और सुखी भी हैं। कषाय के सद्भाव के कारण यथासंभव दु:ख है और यथायोग्य कषाय के अभाव से उत्पन्न वीतरागता के सद्भाव से यथासम्भव सुखी भी हैं।

(3) ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनिवर कषायों के अभाव के कारण पूर्ण सुखी हैं।

(4) तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती अरहन्त भगवन्तों में सुख अनन्तरूप से परिणमित होता है, अत: वे अनन्त सुखी हैं। *क्रमशः*

करणानुयोग

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, मोक्षमार्ग; सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का स्वरूप; स्व और पर का ज्ञान, हेय-ज्ञेय-उपादेय भाव इत्यादि सम्बन्धी सच्चे उपदेश देनेवाले आचार्यादिकों का अर्थात् तीर्थंकर, आचार्य, उपाध्याय, साधु, पंचम या चतुर्थ गुणस्थानवर्ती ज्ञानी जीवों का समागम मिलना; उनके द्वारा दिए गए उपदेश का अर्थात् देशना का मिलना और उपदेशित पदार्थों का ज्ञान में धारण होना, देशनालब्धि है।

उपदेश को देशना कहते हैं और उस उपदेश को सुनकर, समझना, याद रखना उसे पुनः पुनः विचारों में लेना देशनालब्धि है। श्रवण, ग्रहण, धारण आदि इसके अंग हैं। मात्र उपदेश सुनने की क्रिया देशनालब्धि नहीं है। देशनालब्धि वाला जीव तो अपने स्वरूप सम्बन्धी उपदेश अत्यन्त रुचिपूर्वक सुनता है, जिसकी देशनालब्धि की योग्यता होती है, भवितव्य होता है, उसे ज्ञानी आचार्य का सत्समागम और उपदेश की प्राप्ति भी सहज होती है। उस जीव की तीव्र रुचि ही उसमें कारणभूत होती है।

देशना के मूल स्रोत अरहन्त भगवान हैं। उनके उपदेशानुसार रचित शास्त्र और उनका उपदेश बताने वाले गुरु भी देशना के स्रोत हैं, देशना देने वाले हैं। वे तो मात्र मोक्षमार्ग का ही उपदेश देते हैं। चौथे, पाँचवें गुणस्थान वाले जीव अभी गृहस्थावस्था में हैं। शास्त्र स्वाध्याय करते समय वे भी मात्र मोक्षमार्ग का ही उपदेश देंगे, आत्मस्वरूप का कथन करेंगे, आगम के अनेक सिद्धांत समझायेंगे।

देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप, हेय-ज्ञेय-उपादेश तत्त्वों का स्वरूप आदि का विस्तार से वर्णन करेंगे, समझायेंगे, परन्तु गृहस्थोचित अन्य कार्यों में अपने कुटुम्बीजनों, साधर्मियों तथा समाज के अन्य लोगों को जरूरत पड़ने पर लौकिक उपदेश भी देंगे। उनके शास्त्र विषयक उपदेश को तो देशना

कहेंगे, परन्तु लौकिक उपदेश को देशना कहना योग्य नहीं है।

देशना में तो निमित्तरूप से सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, स्वाध्याय आदि होते हैं, परन्तु देशना तभी कहलायेगी जब कोई जीव देशना का श्रवण करेगा, उसका ग्रहण करेगा अर्थात् समझेगा, उसे याद रखेगा अर्थात् धारणा में लेगा। यदि जो सुना वह समझ में ही नहीं आया तो कुछ कार्यकारी नहीं है। उसी प्रकार समझ में तो आया, परन्तु तत्काल विस्मरण भी हुआ तो क्या काम का? जो सुना, समझा उसे स्मरण में रखकर उस पर विचार करना, चिन्तन-मनन करना और स्वयं युक्ति-न्याय से तर्क की कसौटी पर कसकर उन तत्त्वों की यथार्थ का निर्णय करना यही तो महत्व की बात है। निर्णय होने पर उस रूप परिणमन भी होता है। *क्रमशः*

मार्च 2025 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

2 मार्च - फाल्गुन शुक्ल 3
श्री अरनाथ गर्भ कल्याणक

4 मार्च - फाल्गुन शुक्ल 5
श्री मल्लिनाथ मोक्ष कल्याणक

6 मार्च - फाल्गुन शुक्ल 7
श्री चंद्रप्रभ मोक्ष कल्याणक
अष्टाह्निका व्रत प्रारंभ

7 मार्च - फाल्गुन शुक्ल 8-9 **अष्टमी**
श्री संभवनाथ गर्भ कल्याणक

13 मार्च - फाल्गुन शुक्ल 14 **चतुर्दशी**
षोडशकारण व्रत पूर्ण

14 मार्च - फाल्गुन शुक्ल 15 **होली**
अष्टाह्निका व्रत पूर्ण

18 मार्च - चैत्र कृष्ण 4
श्री पार्श्वनाथ ज्ञान कल्याणक

19 मार्च - चैत्र कृष्ण 5
श्री चन्द्रप्रभ गर्भ कल्याणक

22 मार्च - चैत्र कृष्ण 8
श्री शीतलनाथ गर्भ कल्याणक

23 मार्च - चैत्र कृष्ण 9
श्री आदिनाथ जन्म-तप कल्याणक

28 मार्च - चैत्र कृष्ण 14 **चतुर्दशी**

29 मार्च - चैत्र कृष्ण अमावस
श्री अनंतनाथ ज्ञान-मोक्ष कल्याणक
श्री अरनाथ मोक्ष कल्याणक

30 मार्च - चैत्र शुक्ल 1
श्री मल्लिनाथ गर्भ कल्याणक

31 मार्च - चैत्र कृष्ण 2-3
श्री कुन्थुनाथ ज्ञान कल्याणक

प्रथमानुयोग **कवि परिचय**

पण्डित हीरानन्दजी

पण्डित हीरानन्द आगरा निवासी, पण्डित जगजीवन जी के साथी थे। जगजीवन जी की प्रेरणा से पण्डित हीरानन्द ने पंचास्तिकाय का पद्यानुवाद 1643 ईस्वी में किया था। उनका समय 1613 से 1683 ईस्वी है। पण्डित हीरानन्द जी, आचार्य अमृतचन्द्र से प्रभावित थे, इसके कुछ आधार इस प्रकार हैं —

पण्डित हीरानन्द जी ने पंचास्तिकाय, समयसार पद्यानुवाद में सर्वत्र आचार्य अमृतचन्द्र के मौलिक भावों को ही अभिव्यक्त किया है। उनकी समग्र कृति आचार्य अमृतचन्द्र के व्यक्तित्व एवं विचारों से अनुप्राणित है।

वे आचार्य अमृतचन्द्र की पंचास्तिकाय की समय व्याख्या टीका के रसिक थे। उन्होंने अपनी अनुभूति एवं उद्‌गारों को व्यक्त करते हुए लिखा है कि पंचास्तिकाय की टीका उपन्यास की भाँति रोचक, गम्भीर शब्द एवं अर्थवाली, समस्त प्रकार के अनुमान प्रमाण से संयुक्त, आत्मानुभव के अमृतरस से आप्लावित और कुन्दकुन्द के अनुभव रस की लहरयुक्त तरंगिणी थी।

इस प्रकार आचार्य अमृतचन्द्र से प्रभावित पंडित हीरानन्द जी जैन साहित्य के विद्वान थे।

षट्खण्डागम ग्रंथ की वाचना अनवरत प्रवाहित
महाबंध खंड की द्वितीय पुस्तक की वाचना

विद्वत् समागम – आदरणीय बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर

दोपहर	01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)	**महाबंध**
रात्रि	07.30 से 08.30 बजे तक	भगवती आराधना ग्रन्थ का स्वाध्याय
	08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्चारण सहित सामान्यार्थ**

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
● Password - tm@4321 youtube channel - teerthdhammangalayatan
के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

'जिस प्रकार-उसी प्रकार' में छिपा रहस्य

जिस प्रकार - मृग बाहर सुगन्ध ढूंढता है, परन्तु सुगन्ध बाहर नहीं मिल सकती, सुगन्ध तो उसके पास ही है।

उसी प्रकार - चिदानन्द स्वरूप आत्मा अपने स्वरूप को न पहिचान कर पर में सुख ढूँढे तो नहीं मिलेगा, सुख तो स्वयं उसके पास है।

जिस प्रकार - कोई राजा मदिरा पी कर निच्छल स्थान में पड़ा-पड़ा सुख मान रहा हो तो लज्जा की बात है।

उसी प्रकार - निजानन्द आत्मा शरीर से पृथक् होने पर भी शरीर, कर्म और पुण्य-पाप में आनन्द मान रहा है। श्री गुरु कहते हैं यह बहुत ही लज्जा की बात है।

जिस प्रकार - सूर्य और अंधकार में एकत्व नहीं है।

उसी प्रकार - आत्मा और (अंध) पुण्य-पाप में एकत्व नहीं हैं।

जिस प्रकार - डिब्बी में हीरा रखा है।

उसी प्रकार - शरीर के भीतर चैतन्य हीरा है।

जिस प्रकार - जिनेन्द्र भगवान में मोहादि भाव नहीं हैं।

उसी प्रकार - मोहादिक भाव मेरा भी स्वभाव नहीं है। ऐसा समझकर स्वभाव के आश्रय से निर्मोही होना योग्य है।

जिस प्रकार - कोई नाटक का पात्र - स्त्री का वेश धारण कर ले तो वह स्त्री नहीं हो जाता।

उसी प्रकार - ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा, शरीरादि के स्वांग धारण करता है तो अज्ञानी अपने को तद्रूप मान बैठता है कि मैं वणिक हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं क्रोधी हूँ आदि। आत्मा इन रूप नहीं है।

जिस प्रकार - आत्मा से रहित देह निस्सार है।

उसी प्रकार - रत्नत्रय से रहित आत्मा शोभा नहीं पाता, पूज्यनीय नहीं होता, अर्थात् जिस श्रद्धा, ज्ञान, तप एवं आचरण में आत्मा नहीं है, वह श्रद्धा, ज्ञान, तप आदि निस्सार ही समझना चाहिए।

संकलन - स्व० प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन का सुयश

आचार्य कुन्दकुन्द सम्मान

तीर्थधाम मङ्गलायतन : उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान के 34वें स्थापना दिवस के अवसर पर पहली बार जैनदर्शन के युवा विद्वानों को उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में पर्यटन एवं संस्कृति मंत्री श्री जयवीर सिंह, प्रो. अभयकुमार जैन, श्री अमितकुमार अग्निहोत्री, श्री सौरभ जैन, वित्त निर्देशक श्री दिलीप कुमार गुप्ता इत्यादि महानुभावों की उपस्थिति में तीर्थंकर ऋषभदेव सम्मान—पद्मश्री प्रो. राजा राम जैन, नोएडा; तीर्थंकर महावीर अहिंसा सम्मान—श्रीमती पत्रिका जैन, लखनऊ; आचार्य कुन्दकुन्द सम्मान—डॉ. सचिन्द्र जैन, तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़; भरत चक्रवर्ती सम्मान—डॉ. ज्योति जैन, मुजफ्फरनगर; गणेश प्रसाद वर्णी श्रुत आराधक सम्मान—डॉ. पंकज जैन, भोपाल; श्रुत संवर्धन सम्मान—जैन अमन अकलंक, जयपुर को प्रदान किया गया है।

इस अवसर पर मंत्री श्री जयवीर सिंह ने कहा कि उत्तर प्रदेश 18 जैन तीर्थंकरों की जन्मस्थली है। अत: सभी स्थलों पर विकास कार्य करवाए जा रहे हैं और जैन कॉरिडोर का भी कार्य प्रगति पर है। इसके साथ ही 31 करोड़ रुपये की धनराशि पर्यटन विभाग को जैन धर्म से सम्बन्धित स्थलों को बेहतर बनाने के लिए उपलब्ध कराई गई है। सभी विद्वानों ने उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान का हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए कहा कि जीवन के अन्तिम समय तक जैनधर्म की पताका को दिग्दिगन्त तक फहरायेंगे। ●

आचार्य कुन्दकुन्द जन्मदिवस

तीर्थधाम मङ्गलायतन : बसन्तपंचमी, माघ शुक्ल पंचमी के दिन कलिकाल सर्वज्ञ, आचार्य कुन्दकुन्द का जन्मदिवस हर्षोल्लासपूर्वक पूजन विधान और स्वाध्याय के साथ आयोजित किया गया। इस अवसर पर महावीर जिनालय में प्रात: प्रक्षाल, पूजन, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन और डॉ. सचिन्द्र शास्त्री का स्वाध्याय, जिसमें आचार्य कुन्दकुन्द के पंच परमागमों का महत्त्व तथा निज हित की प्रेरणापूर्वक एवं आत्महित का मूलमन्त्र 'आचार्य कुन्दकुन्द के परमागमों का सार है।'

दोपहर में वाचना, (महाबंध) आदरणीया बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबहिन द्वारा सायंकाल जिनेन्द्रभक्ति तत्पश्चात् धार्मिक कक्षाओं का संचालन तथा रात्रि में भगवती आराधना एवं समयसार कक्षा के द्वारा सम्पूर्ण दिन का कार्यक्रम आराधनामय रहा।

दशलक्षण पर्व हेतु स्वीकृति

तीर्थधाम मङ्गलायतन : आगामी दशलक्षण पर्व (28 अगस्त से 06 सितम्बर 2025) पर जो मङ्गलार्थी छात्र, विद्वान स्वाध्यायार्थ, विधान हेतु समाज में जाना चाहते हैं, वे कृपया अपनी पूर्व सूचना तीर्थधाम मङ्गलायतन में पण्डित सुधीरजी 9756633800 को अवश्य प्रेषित करें।

मङ्गल प्रभावना

तीर्थधाम मङ्गलायतन में विद्वानों के आगमन की शृंखला में दिनांक 10 फरवरी 2025 से 14 फरवरी 2025 तक बालब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी सोनगढ़ का लाभ भगवान आदिनाथ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी छात्रों और उपस्थित परिवारीजनों को प्राप्त हुआ। आदरणीय भाईश्री ने सुबह योगसार व सायंकाल नियमसार ग्रंथ पर मार्मिक स्वाध्याय का लाभ प्रदान किया। इसी अवसर पर मङ्गलायतन के ट्रस्टी मनुभाई लन्दन पधारे। इसके पूर्व बालब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी एवं श्री मनुभाई ने हस्तिनापुर स्थित नवनिर्मित तीर्थधाम चिदायतन में विराजमान जिनप्रतिमाओं के दर्शनों का लाभ लिया।

पण्डित सुधीर शास्त्री ने उनका आभार व्यक्त करते हुए पुन: पुन: मङ्गलायतन पधारने का अनुरोध किया।

वैराग्य समाचार

दिल्ली : बालब्रह्मचारिणी प्रज्ञा दीदी का आकस्मिक देहपरिवर्तन हो गया है। आप ब्राह्मी सुन्दरी विद्यानिकेतन की प्राचार्या थीं, आपका सम्पूर्ण जीवन तत्त्वज्ञानमय था।

सागर : श्रीमान् गुलाब सेठ का आकस्मिक देहपरिवर्तन हो गया है। आप अनेक संस्थाओं धार्मिक संस्थाओं के संरक्षक, अध्यक्ष आदि पदों पर शोभित थे, बुन्देलखण्ड मुमुक्षु समाज के आधारस्तम्भ थे।

मुम्बई : श्रीमती वरजूबेन हताया का आकस्मिक देहपरिवर्तन हो गया है। आप जबेरचन्दजी, ब्रजलालजी की माताजी थीं, आपका जीवन जिनधर्म के संस्कारों से ओतप्रोत था और आपने सम्पूर्ण परिवार को भी जिनधर्म पालने की शिक्षा दी।

उज्जैन : बालब्रह्मचारिणी ज्ञानधारा झांझरी का आकस्मिक देहपरिवर्तन हो गया है। आपको तीर्थधाम मङ्गलायतन के प्रति आपको असीम स्नेह था।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार दिगम्बर आत्माओं के सुगतिगमन, बोधिलाभ एवं शीघ्र मुक्ति प्राप्ति की भावना भाता है।

होकर सदैव एकरूप अर्थात् शुद्ध ही रहता है। स्वयं अरहंत एवं सिद्धदशा भी अनित्य होने से उसके विषय नहीं हैं, बल्कि स्वयं अरहंतों एवं सिद्धों का सम्यग्दर्शन भी उस शुद्ध जीवतत्त्व में ही 'अहं' करता है। श्रद्धा का एकमात्र कार्य अहं करना होता है। वह जिसमें भी अहं करती है, उसे अपनी पूरी सत्ता अथवा अपना पूरा आत्मा मानती है, उसमें ज्ञान की तरह मुख्य-गौण व्यवस्था नहीं होती, अत: यदि पर्याय अथवा परपदार्थ श्रद्धा का विषय हो तो नियम से उनका परिवर्तन अर्थात् नाश होने पर आत्मा का ही पूरा नाश प्रतीत होता है, फलस्वरूप अनंत आकुलता होती है। इसी का नाम पर्यायदृष्टि, पर्यायबुद्धि अुवा मिथ्यादृष्टि है, अत: उसका विषय ध्रुव, अविनश्वर, शुद्ध जीवतत्त्व ही होता है।

समयसार के सभी अधिकारों में इस शुद्ध जीवतत्त्व के परिशुद्ध स्वरूप का पता देना ही आचार्यदेव को अभीष्ट रहा है। उन्होंने सर्वत्र इसका यशोगान किया है; क्योंकि इसका स्वरूप सुनिश्चितरूप में जाने बिना सम्यग्दर्शन एवं स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष रूप शुद्धनयात्मक आत्मानुभूति (सम्यग्ज्ञान) ही नहीं होती, फिर चारित्र की चर्चा तो काफी दूर की बात है।

सचमुच यदि कुन्दकुन्द का समयसार नहीं होता तो प्राप्त जिनागम में से द्रव्यदृष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शन का विषय ही खोज पाना संभव नहीं था, अत: आचार्य कुन्दकुन्द के समग्र साहित्य में यह द्रव्यदृष्टि एवं उसका विषय शुद्ध जीवतत्त्व (शुद्धात्मा) ही कुन्दकुन्द का सर्वोत्कृष्ट प्रदेय है।

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

स्वर्णिम अवसर –

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में प्रवेश हेतु

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के आगामी सत्र में अंग्रेजी माध्यम से कक्षा सातवीं पास कर चुके विद्यार्थियों के लिए कक्षा आठवीं के लिए सुनहरा अवसर है जो भी छात्र यहाँ के सुरम्य वातावरण में उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का भी लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, वे हमारे कार्यालय अथवा वेबसाइट से प्रवेश आवेदन-पत्र मंगाकर अपेक्षित जानकारियों एवं प्रपत्रों के साथ भरकर भेज देवें।

विदित हो कि कम से कम 60 प्रतिशत या उससे अधिक अंक प्राप्त विद्यार्थी ही आवेदन योग्य हैं, स्थान सीमित हैं। अत: शीघ्र ही पूर्ण जानकारी प्राप्त कर आवेदन-पत्र भेजने का अनुरोध है। अन्तिम तिथि - 28 फरवरी 2025।

प्रवेश शिविर – 26 मार्च 2025 से 29 मार्च 2025 तक
मङ्गल सान्निध्य – पंडित पुनीत जैन, हैदराबाद

तीर्थधाम मङ्गलायतन (प्रवेश फार्म, भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन)
C/o विमलांचल, हरिनगर, गोपालपुरी, अलीगढ़ (उ.प्र.) 202001
सम्पर्क सूत्र - 9756633800 (पं. सुधीर शास्त्री); समकित जैन 8279559830 (उपप्राचार्य)
info@mangalayatan.com; www.mangalayatan.com

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वपिल जैन द्वारा मङ्गलायतन मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि.वि.

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com